International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 79-81

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 79-81
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 27-11-2014
Accepted: 29-12-2014

डॉ सुनीता शर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ सुनीता शर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय उदयपुर, राजस्थान, भारत

अथर्ववेद में वायु एवं जल द्वारा रोग उपचार

डॉ सुनीता शर्मा

प्रस्तावना

वेद ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं और विश्व में इनसे प्राचीन कोई भी साहित्य उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेद विज्ञान भी वेद का ही उपदेश है वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्ग साहित्य की गणना की जाती है। महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की 21. यजुर्वेद की 100, सामवेद की 1000 एवं अथर्ववेद की 9 शाखाएं प्रचलित थी। सम्प्रति ऋग्वेद की शाकल शाखा, शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी तथा काण्व शाखा कृष्ण यजुर्वेद की 65 शाखाओं में से तैतिरीय, मैत्रायणीय, कठ और कपिष्ठल शाखा, अथर्ववेद की शौनक शाखा प्रचलित है अथर्ववेद की शौनक शाखा में 20 काण्ड है। अथर्ववेद में रोगनिवृत्ति सम्बन्धी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। चिकित्सा विज्ञान का मूल अथर्ववेद में प्राप्त होने के कारण आयुर्वेद के संहिताकारों ने अथर्ववेद से अपना सम्बन्ध बताया है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद के विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहने के कारण अष्टाङ्ग आयुर्वेद का विभागरूपेण वर्गीकरण का अभाव परिलक्षित होता है, चरक आदि संहिता ग्रन्थों में इसका परिष्कृत रूप दिखलायी देता है। अथर्ववेद के सूत्र ग्रन्थ कौशिक में सूत्र अथर्ववेदीय भैषज्य सामग्री का विनियोग स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है।

अथर्ववेद में वायु चिकित्सा

वायु प्राकृतिक वस्तुओं में प्राणिमात्र के लिए स्वयं औषध रूप है। यह अपने भेषज धर्मों से प्राणियों में रोग निवृत्ति की शक्ति का संचार करता रहता है। [1] वायु हृदय सम्बन्धी रोगों में लाभदायक है और आयु को बढ़ाने वाला है। [2] यह रोगनाशक प्रक्रियाओं का भी शरीर में संचार करता है। प्राण और अपान की सुस्थिति शरीर में उत्तम प्रकार से से बनी रहती है तो सब प्रकार की सैकड़ों अपमृत्यु हट जाते हैं। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह प्राण और अपान को बलवान करने का प्रयत्न करे, जिससे चह दीर्घ आयु को प्राप्त करे। [3]

यदि प्राण और अपान बलवान होकर शरीर में ठीक कार्य करने लगे. तो शरीर, इन्द्रिय और सब अवयव निरोग, बलवान और हष्ट-पुष्ट रहते हैं और दीर्घायु प्राप्त होती है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने प्राण-अपान का बल बढ़ाना आवश्यक है, जिससे वह वृद्धावस्था तक निरोग होकर जीवित रहे। [4]

वृद्धावस्था तक सुदृढ़ बलवान और निरोग होकर रहने योग्य दीर्घ आय प्राप्त करना चाहिए. जिस वृद्ध अवस्था में बल, निरोगता और सुख स्थिर रहता है, ऐसी वृद्धावस्था प्राप्त करनी चाहिए और सैंकड़ों अपमृत्युओं को भगाना चाहिए। [5]

प्रकृति में विद्यमान भौतिक पदार्थों में वायु सबसे गतिशील पदार्थ है, वायु की गतिशीलता के कारण हमारे उपयोग के लिए प्राणतत्त्व (ऑक्सीजन) निरन्तर मिलता रहता है। वायु शरीर के अन्तर्भाग के साथ-साथ ब्रह्माण्ड के अन्तर भाग को पवित्र करता है। इसलिए इसका नाम 'पवन अर्थात् पवित्र करने वाला है। शरीर के आधारभूत तत्त्वों में वायु महत्त्वपूर्ण है, वायु के साथ मिलकर अग्नि (पित्त) और जल (कफ) शरीर को धारण करते हैं। कफ और पित्त शरीर धारण पोषण के आधार अवश्य है, किन्तु स्वयं में ये गतिशील नहीं हैं। [6] इस प्रकार शरीर में वायु एक प्रधान और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

चिकित्सा के क्रम में वायु का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी क्रम में प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्राणायाम साधना को प्रवर्तित किया। प्राणायाम द्वारा शरीर और मन दोनों के अस्वास्थ्य को दूर किया जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने बुद्धि की मलिनता दूर करने और चित्त की स्थिरता के लिए प्राणायाम को एक मात्र उपाय बताया है। [7] मनु ने भी प्राणायाम को शरीर और इन्द्रियों के सभी मलों को भस्म कर देने का एक मात्र उपाय माना है। [8]

अथर्ववेद में ऋषि का मानना है कि प्राण विराट है. देष्ट्री है. यही कारण है कि सभी देवता प्राण की उपासना करते हैं ऋषिगण प्राण को सूर्य, चन्द्रमा, प्रजापति तक मानते हैं और प्राणायाम की अवश्य करणीयता को स्वीकार करते हैं। [9]

ऋग्वेद का ऋषि उलवातायन वायु को प्राणतत्त्व का वाहक ही नहीं, अपितु साक्षात् भेषज और दीर्घ जीवन के लिए परमावश्यक स्वीकार करते हैं। [10] ऋग्वेद के गोतम राहूगण ऋषि का मानना है कि जिसके घर में वायु का आवागमन उचित रूप से होता है, वह सबसे सुरक्षित मनुष्य है, रोग और मृत्यु उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं। [11]

ऋग्वेद में सप्तऋषिगण कहते हैं कि समुद्र की ओर अर्थात् उत्तर से दक्षिण को प्रवाहित होने वाला वायु बल प्रदान करता है। आयुर्विज्ञानिक इस वायु को रसायन मानते हैं तथा यह वायु रोगों का निवारण करने वाली होती है। [12]

अथर्ववेद में ऋषि ब्रह्मा स्वयं रोगी से कहते हैं कि मैंने मृत्यु के पाश से तुमको छुड़ाते हुए तुम्हारे लिए वायु से प्राणों को प्राप्त किया है, मैं तुम्हे दीर्घ आयुष्य प्रदान कर रहा हूँ। [13]

आयुर्वेद ग्रंथों में वायु पाँच प्रकार की बतायी गयी है - (1) प्राण वायु, (2) अपानवायु, (3) उदान वायु, (4) समानवायु एवं (5) व्यानवायु। इनको पंच प्राण भी कहा गया है। ये पाँचों वायु साम्यावस्था में रहकर मानव शरीर धारण करता है और विकृतावस्था में शरीर का नाश करता है। मनुष्य को चाहिए कि वह इन पंच प्राणों की हमेशा रक्षा करता रहे. जिससे वह दीर्घजीवी रहे।

वायु सर्वदा प्राणियों को जीवन देने वाला पदार्थ कहा गया है, रोगी के लिए शुद्ध वायु अति आवश्यक है, यह स्वस्थ मनुष्य को जीवन शक्ति देती है, और उसे रोगों के आक्रमणों से बचाती है तथा रोगों के विषों को नष्ट करती है। शुद्ध वायु को भी अधिक गुणकारी, लाभप्रद एवं उपयोगी और रोगों के अनुकूल सगुण बनाने के लिए उसमें कुछ औषधियों या उड़नशील गन्धों को फैलाया जा सकता है, जैसे नीम, कृष्ण तुलसी, कपूर, गुग्गुल आदि औषधियों को रोगी के पास रखते हैं या उसके कमरे में कपूर आदि। औषधियों को आग में जलाकर गन्ध को फैलाते हैं। ये सभी विधियाँ वायु चिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं।

अथर्ववेद में जल चिकित्सा

उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए जल का महत्त्व सूर्य, चन्द्र, वायु या अग्नि से किसी प्रकार कम नहीं है। भाव प्रकाश निघण्टु में जीवन का संरक्षक होने के कारण इसका एक नाम जीवन और अमृत भी कहा गया है। [14] यजुर्वेद में जल को सर्वश्रेष्ठ दिव्य औषधि कहा गया है। [15]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में जल में अमृत होने से उसे सभी रोगों की औषध और सभी के लिए कल्याणकारी बतलाया गया है। [16] ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि हमारे शरीर में रोग और रोग के जो बीज है, जल उसे हमारे शरीर से निकाल कर फेंक देता है। [17]

आयुर्विज्ञान के प्राचीन आचार्य भावमिश्र के अनुसार जल से थकावट और सुस्ती दूर होती है। मूच्छा, प्यास, तन्द्रा, अजीर्ण, वमन और कब्ज दूर करता है। जल बलकारी हृदय को स्वस्थ और सबल बनाने वाला है जल अमृत के समान जीवनदायक है। [18]

प्राचीन आचार्यों ने चिकित्सा की दृष्टि से जल के गुणों पर अनुसंधान किया व धारा जल अर्थात् वर्षा के जल को अधिक गुणकारी माना। [19] यह जल त्रिदोष नाशक अर्थात् वात, पित्त, कफ तीनों दोषों के कुपित होने के कारण उत्पन्न रोगों के लिए भेषज है। प्राचीन आचार्य अश्विन मास में एकत्र किये गये जल को सभी रोगों की औषध मानते थे। [20]

वैदिक ऋषि जीवन रक्षा के लिए जल और सूर्य की किरणों का संयुक्त प्रयोग करते थे। ऋग्वेद में यह मन्त्र द्रष्टव्य है -

अमूर्या उपसूर्ये यामिर्वा सूर्यः
सहा ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्। [21]

(ऋग्वेद 1/23/17)

अर्थात्, जिस जल के साथ सूर्य की किरणें है, वह हमें अध्वर (अंहिसित) अर्थात मृत्यु से सुरक्षित बनाये।

वैदिक ऋषि जीवन रक्षा के लिए जल और सूर्य की किरणों का संयुक्त प्रयोग दो प्रकार से करते थे। प्रथम प्रयोग कृत्रिम जलप्रपात बनाकर जलधारा को पार करके आई हुई सूर्य किरणों का शरीर पर प्रयोग। इसी का संक्षिप्त और सरल प्रयोग प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य देने की भावना से प्रचलन है, जिसमें कुछ सूर्य की किरणें जल को पार करके अर्घ्य देने वाले के शरीर पर पड़ती हैं। अन्य प्रयोग जल को सूर्य की किरणों से भावित करके किया जाता रहा है। पुराने घरों में जलधार आंगन के उत्तरी भाग में ऊँचा चबूतरा निर्मित करके बनाया जाता था। जहाँ दिन में सामान्यतः सात आठ घण्टे जल से भरे हुए पात्रों पर सूर्य की किरणें पड़ती थीं। जल संग्रह के यह पात्र अपने आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, रजत, ताम्र और लोहे के होते थे। यहां यह स्मरणीय है स्वर्ण पात्र में भावित (रखा हुआ) जल हृदय रोगों से, रजत पात्र में भावित जल श्वसन संस्थान से, जुकाम आदि रोगों से एवं ताम्र पात्र में भावित जल उदर रोगों से मुक्ति दिलाता है। आयुर्विज्ञान के ग्रन्थों में दिव्य (वर्षा के) जल को संग्रह करके स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि के पात्रों में रखने का निर्देश दिया गया है।

अथर्ववेद के ऋषि भृगु-अडिगार एवम् ऋग्वेद के जमदग्नि ऋषि का मानना है कि जल उत्तम औषधि है। यह समस्त रोगों को अकेले ही दूर करता है। इसके प्रयोग से आनुवांशिक अर्थात् वंश परम्परा से प्राप्त रोग भी दूर होते हैं। [22] अथर्ववेद के एक अन्य ऋषि शन्तति का मानना है कि हिमालय से निकल कर समुद्र में मिलने वाली जल धाराएँ दिव्य धाराएँ है इनका सेवन करने से हृदय की पीड़ा दूर होती है। इसके अतिरिक्त आँखों, एड़ियों और पैरों में होने वाली पीड़ा. इन सबको सर्वोत्तम जलरूपी वैद्य मिटा देता है। [23]

अथर्ववेद के ब्रह्मा नामक ऋषि का विश्वास है कि पर्जन्य के जल के प्रयोग से बिस्तर पर पड़ा हुआ व्यक्ति भी उठ खड़ा होता है और पापों और रोगों से मुक्त होकर अमर हो जाता है। अर्थात् सुदीर्घ जीवन प्राप्त करता है। [24]

अथर्ववेद के ऋषि ब्रह्मा अना जल के प्रकारों में भूमि की गहराई तक खोद कर नीचे से निकाले गये जल को आरोग्य लाभ के लिये बहुत उपयोगी मानते हैं। [25] इसके साथ-साथ धन्वन् अर्थात् ऊपर या रेगिस्तान में प्राप्त वनों के समीपवर्ती भूभागों के कओं के तथा घड़ों में भरकर रखे गये जल को भी स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी व उपयोगी माना है। [26]

अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के दूसरे सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों में हिमालय के जल उत्स अर्थात् स्रोत के जल, प्रवाहित होने वाले जल, वर्षा के जल, रेगिस्तान के जल. नगर और वनों के मध्यवर्ती प्रदेशों (आनूप्य) के जल, कूप जल, घड़ों में रखे जल के तथा गहरे भूमिभाग से खोदकर निकाले गये जल को कल्याणकारी और रोग निवारक कहा है। दिव्य अथवा स्रोत जल का उपयोग करके मनुष्य निरोग और घोड़े के समान शक्तिशाली हो सकता है। [27]

रक्तप्रवाह एवम् पीड़ादायी विद्रधि फोड़ा आदि के लिए विविध प्रकार के जल और रस तीव्र औषधि हैं। रोग पीड़ित भाग पर जलधारा गिराना अथवा उस पर पानी की पट्टी रखना अतिशय लाभकारी होता है। [28]

शल्य व्रण इस प्रयोग से अतिशीघ्र ठीक होता है। अथर्ववेद के ब्रह्मा ऋषि मनुष्यों को सम्पूर्ण आयु अर्थात सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक जीने के लिए तथा प्राणहर व्याधियों से जल के द्वारा सुरक्षित होकर सम्पूर्ण आयुष्य के लिए जीवित रहने और दूसरों को जीवित रखने का विश्वास रखते हैं। [29]

वेद, संहिताओं के अतिरिक्त ब्राहाण ग्रंथों में भी जल चिकित्सा के संकेत मिलते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में जल को अमृत कहा गया है। [30] इसलिए हमें इस कल्याण मयरस से सम्पूर्ण रूप से लाभ उठाना चाहिए। इस रस से ही सम्पूर्ण विश्व तृप्त होता है हम भी इससे कल्याण और तृप्ति प्राप्त करें। [31]

चिकित्सा के प्रसंग में जले का एक और प्राकृतिक प्रयोग प्रसव के संदर्भ में प्राचीनकाल में किया जाता था। यह प्रयोग है - जल में प्रसव ।

गर्भ में शिशु भ्रूण में स्थिर तरल द्रव के अन्दर तैरता सा रहता है। गर्भ काल में तैरने का स्वभाव होने के कारण जल में प्रसूत शिशु के डूबने की सम्भावना होनी

ही नहीं चाहिए। इस आधार पर यूरोप के आधुनिक चिकित्सक जल में प्रसव कराने की कल्पना करने लगे हैं। इस चिन्तन को चिकित्सा के क्षेत्र में नवीन चिन्तन माना जा रहा है। किन्तु भवभूमि के उत्तररामचरित में सीता के गर्भ से लव और कुश का जन्म गंगा प्रवास में होना इसकी प्राचीनता को द्योतित करता है। [32]

आयुर्विज्ञान के आचार्यों के अनुसार ऊरुस्तम्भ की चिकित्सा जल द्वारा ही होती है। महर्षि चरक ने शीतल जल वाली कल्याणकारी नदी के विपरीत बहाव में तैरना या जल में चलना अथवा बहाव रहित जल में बार-बार तैरना उपाय बताया है। उनका मानना है कि ऐसा करने से ऊरु प्रदेश में फंसा कफ सूख जाता है और रोग शान्त हो जाता है। [33] जल सम्पर्क से कफ की वृद्धि न होकर कफ का क्षय होता है। जल के द्वारा बाहर निकलने वाली ऊष्मा का निरोध होता है। वह ऊष्मा पलट कर अन्दर को जाकर कफ समूह का भेदन करती है। [34]

शोथ रोग में महर्षि चरक ने सूर्य की ऊष्मा से तप्त जल से स्नान को श्रेष्ठ उपचार माना है। स्नान से पूर्व औषध द्रव्यों के क्वाथ से स्वेदन भी कराते हैं, जिसमें द्रव्य, जल, अग्नि तीनों का प्रयोग होता है। [35]

अतः स्पष्ट है कि वैदिक काल से ही प्राचीन आचार्यों ने जल का चिकित्सा में बहुत प्रयोग किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. "मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानकव" - ऋग्वेद 8/20/23
2. ऋग्वेद - 10/186/1
3. प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
4. व्यन्पे यंतु ऋत्यवो यानाहुतिराञ्छतम्।।- अथर्व 3/11/5
5. इहैवस्तं प्राणापानों माप गातमितो युवम्।
6. शरीरमस्याङगानि जरसे वहतं पुनः ।। - अथर्व 3/11/6
7. जराये त्वा परि ददामि जरायें नि ध्रुवामित्वा।
8. जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यत्तु मृत्युवो यानाहुतिरान्हतम्।। - अथर्ववेद 3/11/7
9. 'पित्तं पगुः कफः पङ्गुः पङ्गवः मलधातवः ।
10. वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।।- शार्ङगंधर संहिता पूर्व 5/43-44
11. योग सूत्र 2/52, 53
12. मनुस्मृति 6/71-72
13. अथर्ववेद - 11/4/12
14. ऋग्वेद - 10/186 /1
15. ऋग्वेद 1/26/1
16. ऋग्वेद 10/137/2
17. अथर्ववेद 8/2/2-2
18. भावप्रकाश निघण्टु 11/1-2
19. वरुणं भिषजां पीतं स्वाहा। वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजम्। यजुर्वेद - 21/40
20. अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्। ऋग्वेद -1/23/16
21. इदमापः प्रवहत यत्किञ्चिद् दुरितं मयि। ऋग्वेद - 1/23/22
22. भावप्रकाश निघण्टु 11/3
23. भावप्रकाश निघण्टु 11/5
24. भावप्रकाश निघण्टु 11/10-10
25. ऋग्वेद 1/23/17
26. अथर्ववेद 3/7/5,
27. ऋग्वेद 10/137/6, अथर्ववेद - 6/24/1-2
28. अथर्ववेद 3/31/11
29. अथर्ववेद 16/2/3
30. अथर्ववेद 16/2/2, 16/66/1
31. अथर्ववेद 1/6/4
32. अथर्ववेद 16/2/1-4, 6/57/ 1-2
33. अथर्ववेद 16/66/1
34. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/ 7/6/3
35. यजुर्वेद 11/50-52, 36/14-16
36. उत्तर रामचरितम्, पृ. 156
37. चरक चिकित्सा 27/56-60
38. चरक चिकित्सा 27/56-60 (चक्रपाणि टीका)
39. चरक चिकित्सा 12/67